chapter- 4

चतुर्थ अध्याय

वर्ण्य विषय का वैविध्य

वैसे तो साहित्य की किसी भी कृति का वर्ण्य-विषय रचनाकार की मानसिक निर्धारणा पर निर्भर रहता है। इस संदर्भ में दो रूप देखे जा सकते हैं - एक तो वह जहाँ कथ्य प्रबंधात्मक या कथासूत्र के रूप में सृजित होता है और दूसरा वह जहाँ बात मुक्तक रूप में कही जाती है। प्रबन्ध-काव्य, खण्ड-काव्य, महाकाव्य जैसे ग्रंथों की रचना कथा सूत्र में परिगुंफित होने के कारण प्रबन्ध-सूत्र में अग्रसर होती है। साहित्य की गद्य विधायें भी इसी प्रबन्धात्मक सूत्र में सम्पादित होती हैं, किन्तु काव्य में गीत-विधा का स्वरूप अधिकांशतः मुक्तक रूप में ही सामने आता है।

गीत-काव्य में भी जहाँ गीत नाटिकायें या गीत कथाएँ लिखी जाती रही हैं, वहाँ भी कहीं-कहीं प्रबन्धात्मक तथा मिथकीय कथासूत्रों का अवलोकन होता है। गीति-नाट्य या नृत्य-नाटिकाओं में भी इस तरह के प्रबंधात्मक कथा सूत्रों का सम्पादन देखा जा सकता है। यहाँ यह बात भी आश्चर्य-जनक रूप से सामने आती है कि जहाँ भी गीतों के माध्यम से कथात्मक कृति का सर्जन होता है। वहाँ गीत के उभरे रूप सामने आते हैं। अर्थात् एक-एक गीत अपने आप में सम्पूर्ण होता है तथा पूर्वापर के गीतों के साथ जुड़कर कथा-सूत्र को अग्रसर भी करता है। जैसे-जयदेव, विद्यापति, सूरदास, तुलसीदास आदि कवियों के गीतात्मक पद्य-साहित्य में यही तथ्य देखा जा सकता है। सूरदास के रागात्मक पद जिन्हें कीर्तन-गायन भी कहा गया है। वस्तुतः तो एक सम्पूर्ण गीत का ही रूप है। क्योंकि गीत के स्वरूप में रागात्मकता, छान्दसता, गेयता और काव्यानुशासित एक निश्चित स्वरूप विद्यमान रहता है। सूर-सागर मुक्तक गीतों का संग्रह भी है और श्री मद् भागवत का औचित्यपूर्ण भावानुवाद भी है। इनके कथ्य में कृष्ण-लीला का केन्द्रस्थ होना उभय रूपों में समाविष्ट है जैसे श्रीमद् भागवत के दसवें स्कन्द की कृष्ण-लीलाओं का कथात्मक प्रबन्ध रूप भी देखा जा सकता है और कृष्ण की अलग-अलग लीला विलासों का भी मुक्तक रूप में अनुभव किया जा सकता है।

गीति-विधा में प्रबंधात्मक रचनाओं का सृजन आदि-काल और भक्ति-काल में अपेक्षाकृत अधिक हुआ है। उत्तर-मध्य-काल में रीति का समग्रतः काव्य-साहित्य मुक्तक छन्दों में ही रचा गया है। विशुद्ध गीतों की रचनायें इस काल में बहुत कम हुई हैं। आधुनिक काल में गीतों का स्पष्ट प्रभाव अनुभव किया जा सकता है। साहित्यकारों ने अपनी गद्य रचनाओं में भी संदर्भानुसार गीतों के लिए अनुकूल परिस्थितियाँ पैदा कर सुन्दर-सुन्दर गीत उसमें समाविष्ट किये हैं। भारतेन्दु-काव्य, हरिश्चन्द्र और जयशंकर प्रसाद आदि के नाटकों में संदर्भानुसार ऐसे अनेक गीतों को अनुभव किया जा सकता है,

जो कथा-सूत्र को तो अग्रसर करते ही हैं। साथ में उनका मुक्तक रूप भी सुरक्षित रहता है। ऐसे गीतों को हम प्रायोजित गीत कह सकते हैं। इसी तरह के प्रायोजित गीत कालान्तर में रेडियो नाटकों में भी प्रयुक्त हुए हैं।

कहीं-कहीं रचनाकारों ने अपनी प्रबन्धात्मक या आख्यानक-काव्य रचनाओं में अर्थात् खण्ड-काव्य या महाकाव्य में भी कथा-सूत्र में व्यवहृत छन्द से अलग हटकर कुछ विशिष्ट गीतों को ही समाविष्ट किया है। जयशंकर प्रसाद की कामायनी रामधारी सिंह दिनकर की उर्वशी तथा मैथिलीशरण गुप्त की साकेत आख्यानक रचनाओं के प्रबन्ध-सूत्रों में संदर्भ से जुड़े हुए गीत अपनी विशष्ट पहचान के साथ संयोजित हुए हैं।

आधुनिक-काल का हिन्दी काव्य विशेष रूप से मुक्तक-काव्य की बहुलता के साथ ही अग्रसर हुआ है। छायावाद का सम्पूर्ण काव्य वैभव इसी मुक्तक छन्द-विधा पर आधारित है। छायावाद के अधिकांश कवियों ने हिन्दी गीत को एक नयी भंगिमा और एक विशिष्ट पहचान दी थी। माखनलाल चतुर्वेदी, पंत, प्रसाद, निराला, महादेवी वर्मा, रामकुमार वर्मा, दिनकर नागार्जुन आदि के गीतों का वैविध्य रूप इस संदर्भ में विशेष उल्लेखनीय है।

मैथिलीशरण गुप्त ने गीतों को अमिधा-प्रेरक इति वृतात्मक रागात्मक गुण प्रदान किया। माखनलाल चतुर्वेदी ने गीतों को जन संस्कृति के अनुकूल लोकाग्रही बनाने का यत्न किया। सुमित्रानन्दन पंत प्रकृति की सौन्दर्यवादी अभिचेतना के साथ एक नये भक्ति-राग को लेकर कोमलकान्त पदावलियों के साथ सामने आये, तो प्रसाद के गीतों में नयी भाव-भूमि के साथ आध्यात्मिक चिन्तन की गहन दार्शनिकता सम्पादित हुई है। उन्होंने गीतों को एक विशिष्ट प्रबन्धात्मक अंदाज देकर नये प्रयोगों के साथ उसे जोड़ा, जिसे हम कामायनी या आँसू में स्पष्ट अनुभव कर सकते हैं। इस गीत मुहूर्त में अपनी विशिष्ट पहचान दर्ज कराने वाली कवित्री महादेवी वर्मा सामने आती हैं। जिन्होंने भावात्मक संवेदना के आधार पर आत्मीय अनुभूतियों को सरल, सरस और सहज रागात्मक स्वरों में प्रस्तुत किया है-

कूल भी हूँ, कूलहीन प्रवाहिनी भी हूँ,
बीन भी हूँ मैं, तुम्हारी रागिनी भी हूँ।[1]

महादेवी वर्मा के गीतो में जहाँ आत्मीय संवेदना का स्वर मुखर रहा है, वहीं उनकी आध्यात्मिक चेतना की अपने गम्भीर निराधारों के साथ सामने आयी है।

सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला इस युग के प्रयोगवादी विशिष्ट क्रांतिकारी गीतकार रहे हैं जिन्होंने अपने अभिनव गीत प्रयोगों से हिन्दी-काव्य-जगत को गीतों की एक नयी रागात्मक पहचान से परिचय कराया था। उन्होंने छान्दस अनुबन्ध को महत्व न देकर गीत में रागात्मक लयबद्धता और गेयता को प्रधानता दी थी। परम्परित छन्दों के प्रति और प्रचलित गीत-वृत्त के प्रति उनकी प्रयोगात्मक अभिचेतन ने हिन्दी गीत-विघा को एक सर्वथा नयी पहचान दी, जिसने आगे चलकर बहुआयामी एवं समर्थ सामायिक नवगीत की दिशा निर्देशित की। वस्तुतः निराला से ही हिन्दी-काव्य जगत में गीत का एक बड़ा मोह स्थापित हुआ। वृत्त एवं कथ्य की दिशा में अभिनव प्रयोगो के सन्दर्भ में निराला एक मील के पत्थर के रूप में प्रतिष्ठित हैं, जहाँ खड़े होकर वे हिन्दी-गीत-यात्रा को एक नयी गति और पहचान देते हुए दिखलाई देते हैं।

जहाँ तक गीत और नवगीत का प्रश्न है, वहाँ हम कह सकते हैं कि गीत का एक बड़ा बदलाव इसी छायावाद की देन है। जहाँ से गीत की पौराणिक संरचना और पारम्परिक सोच में एक बड़ा बदलाव आया, गीत जो अब तक वैयक्तिक अनुभूतियों या लोक रंजन कल्पनाओं के आकाश से उतरकर जमीन पर आ गया था। समय के बदलते मूल्यों ने और वैश्विक-धरातल पर आधुनिक बाजारवाद की उपयोगिता-वादी वैचारिकी ने गीत को नयी दिशा में अग्रसर होने लिए जैसे-वाध्य कर दिया था। छायावाद का गीतकार जहाँ वैयक्तिक संवेदनाओं के गलियारे में घूम रहा था वही उसका सोच वायवी या परिकल्पित होते हुए भी सांसारिक अवश्य था। पंत और प्रसाद के गहन वैचारिक गीत राग को सर्व प्रथम निराला ने खंडित किया। जब उन्होंने आम आदमी से सम्पृक्त सहज संवेदनाओं को गीत का रागात्मक संस्करण प्रदान किया। जहाँ एक ओर प्रसाद की कामायनी अपने गहन आध्यात्मिक सोच के परिवेश में एक नये आख्यान के दरवाजे खोल रही थी। वहीं निराला ने इसी आख्यानक गीत राग में स्वर मिलाते हुए 'राम की शक्ति पूजा' के एक मौलिक बदलाव को सामने रखा। किन्तु निराला के लिए जब इससे भी संतोष न हुआ तब उसने जनाग्रही संवेदनाओं के साथ कथ्य के लोक पक्ष को एक नया राग दिया। 'वह तोड़ती पत्थर' 'सरोज स्मृति' और 'तुलसीदास' जैसी रचनाओं में उनके बदले हुए कथ्य के तेवर और प्रस्तुति के नयी भंगिमा सामने आती है यहाँ जब निराला ने गीत के संदर्भ में वैविध्यपूर्ण अविधारा को प्रवाहित किया, तो जैसे गीत के संदर्भ में एक क्रांतिकारी परिवर्तन सामने आ गया। अब गीत केवल गाने-गुनगुनाने या मन बहलाने की वस्तु न रहकर किसी निश्चित उद्देश्य को साथ लेकर सामने आया।

जिसमें कथ्य की सहजता और प्रस्तुति का सारल्य परिलक्षित होने लगा। अब गीत का मिजाज पूरी तरह बदल चुका था। छायावाद से ही यह बदलाव अनुभव किया जा सकता है जहाँ भले ही संवेदना के स्वर वैयक्तिक रहे हो, किन्तु प्रकृति के प्रति आत्मीय लगाव और आम आदमी की दखलअंदाजी ने गीत को छायावाद से ही जनाग्रही रुझान के साथ जोड़ दिया था। गीत अपनी नयी पहचान के साथ अग्रसर हुआ। जिसमें प्रेम, प्रीति, संयोग-वियोग, राग-विराग के अलावा शोषण, दमन, संत्रास, गरीबी अभाव और पीड़ा के स्वर भी गूंजने लगे। मनोरंजन के आकाश से उतरकर गीत अनुभवों की कठोर जमीन पर उतर आया था। गीत का कथ्य अब आम आदामी पर केन्द्रित हो गया था और इस सामान्यजन की साझेदारी ने ही इसे एक नया लोक-राग दिया, जिसमें व्यक्ति की सामान्य अनुभूतियाँ संयोजित थीं।

छायावाद में स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह जब सामने आया तब गीत के कथ्य में आम-आदमी गैर हाजिर था। सम्पूर्ण छायावादी गीत समझदार बौद्धिक और विचारवान व्यक्तियों की अनुभूतियों से जुड़ा था और इसे व्यक्तिपरक अभिव्यक्ति का आक्षेप लगाकर कालान्तर में इसे निरस्त कर दिया गया था। छायावादी रोमांटिज्म के सामने जनवादी आन्दोलन की अनुगूंज उठ खड़ी हुई। जिसमें मध्यम-वर्ग और निम्न-वर्ग की बराबर की साझेदारी रही है। उच्च और सम्पन्न-वर्ग का भोग-विलाशी ऐश्वर्य यहाँ सम्पूर्ण रूप से अनुपस्थित हो गया था। गीत की प्रगतिवादी अविधारा ने पुरावर्तित सभी मूल्यों को ध्वस्त कर दिया था, किन्तु गीत की लोक प्रतिष्ठा को अभिजात कहे जाने वाले कुछ तथाकथित साहित्यकारों ने दर किनार कर दिया। पाश्चात्य प्रभाव से उदभूत अकविता या नयी कविता ने नयी पीढ़ी को एक ऐसी असंतुलित दृष्टि दी, जिसने हिन्दी कविता की स्मिता को ही विदीर्ण कर डाला। नरेश मेहता ने ठीक ही कहा है कि – "हिन्दी में ये दूर्भाग्यपूर्ण रहा है कि गत चालीस पचास वर्षों में गीतों को लेकर जो उपेक्षा का भाव उत्पन्न हुआ है। उसने काव्य-यात्रा की जो हानि की वह अक्षम्य है। यह ठीक है कि उपेक्षा के कारण ही अनेक सशक्त गीतकार गीत की विधा से दूर होते चले गये। कविता की विधा वह चाहे नयी कविता का फॉर्म रहा या गीत की विधा सब उपलब्धियों से वंचित ही रहे। नईम जैसे सशक्त गीतकार या उमाकांत मालवीय के मार्मिक गीत अपनी सारी काव्यात्मक विदग्धता के बावजूद हाशिए पर ही रहे।'[2]

वस्तुतः गीत को हाशिये पर ढकेलने का षड्यंत्र कविता की नयी धारा के प्रवर्तकों द्वारा किया गया। गीत के प्रति दुर्भाग्य यह रहा कि नयी कविता की तरह इसे समर्थ

समीक्षक नहीं मिल पाये और यह भी कहा जा सकता है कि आधुनिक पत्र-पत्रिकाओं के सम्पादकों ने भी नयी कविता की पक्ष में चर्चायें संयोजित कीं और गीत को दर किनार कर दिया। किन्तु अपने वर्ण्य और कथ्य के लोकाग्रही रुझान के साथ गीत और नवगीत सामान्य-जन-मानस में लोकप्रियता के शिखरों को चूमता रहा और अपनी सम्पूर्ण ओजस्विता के साथ अग्रसर होता रहा।

नवगीत का वर्ण्य

जैसा कि उल्लेख किया जा चुका है कि गीत में कवि की वैयक्तिक संवेदनाओं को ही रेखांकित किया गया अथवा परम्परित लक्षण, रीतियों एवं नीतियों को ही कथ्य का आधार बनाया गया। जिसने श्रृंगार जन्य संयोग, वियोग, प्रकृति के मनोरम दृश्य, दर्शन आध्यात्म और भक्ति के स्वर झंकृत होते रहे हैं। गीतकार कल्पनाओं की अभिनव उड़ान भरता हुआ कविता के अनुपम सौदर्न्य को गीतों में मढ़ता रहा है। नवगीत का वर्ण्य इससे सर्वथा इतर रहा जहाँ गीत कल्पनाओं के सतरंगी आकाश में उड़ान भर रहा था, वहाँ नवगीत अनुभूतियों की कड़ी जमीन पर खड़ा होकर सामान्य आदमी से रु-ब-रु होता नजर आता है। हम नवगीत के वर्ण्य को अनेक शीर्षकों में व्यक्त कर सकते हैं। जहाँ उसकी अभिनवता स्पष्ट होती है।

आत्मीय संबंधों की अहमियत

नवगीतों के कथ्य में पारिवारिक परिवेश की सहज अनुभूतियों को व्यक्त किया गया है। परिवार के सम्पूर्ण सामान्य परिवेश को भी रूपायित किया गया है। आत्मीय संबंधों से जुड़ी संवेदनाओं को पूर्ण भावात्मक उत्कर्ष के साथ व्यक्त किया गया है, जिसमें माँ, पिता, बहन, बेटी, दादा, दादी, बच्चे, बड़े, बूढ़े आदि विभिन्न आत्मीय रिश्तों को बड़े ही सहज परिवेश में गीतांकित किया गया है। यह वर्ण्य का बदलाव वैसे तो निराला से प्रारम्भ हो गया था, किन्तु नवगीत के परिवर्तन में इसका समावेश नवगीत अर्द्धशती के निकट पूर्व से अधिक स्पष्ट हुआ है। कुँअर बेचैन का नवगीत 'बेटियाँ' इस संदर्भ में चर्चित है-

''बेटियाँ शीतल हवाएँ हैं
जो पिता के घर बहुत दिन तक नहीं रहती''[3]

शिव–ओम अम्बर की कविता 'बच्चे', विष्णु विराट का नवगीत 'पिता' माहेश्वर तिवारी का 'गीत गाँव की याद' जैसे अनेक नवगीत भारतीय अविभाज्य पारिवारिक संबंधों की आत्मीय संलग्नता को व्यक्त करने वाले हैं। अधिकांश नवगीतकारों ने बच्चों के संदर्भ में बड़े ही संवेद्य चित्र प्रस्तुत किये हैं। इन चित्रों में पारिवारिक मर्यादाएँ स्नेह के समर्पित भाव तथा परिस्थिति जन्य अभावों की सत्य तस्वीर देखी जा सकती हैं। माँ के प्रति अपार श्रद्धा, पिता के पूज्य भाव और दादा–दादी के प्रति सेवा एवं समर्पण की पवित्र विचार सरणी इन नवगीतों में देखी जा सकती है। परिवेश जन्य संबंधों के विखरते मूल्य इन गीतों में साफ दिखाई देते हैं। इन नवगीतों में केवल संत्रास, दमन, शोषण या अभाव की ही तस्वीर सामने नहीं आती बल्कि पारिवारिक स्नेह की समृद्ध सहानुभूति भी स्पष्ट दिखाई देती हैं।

ये सारे आत्मीय संबंध मानवीय प्रणय की कोमल भावानुभूतियों से उत्पन्न मन के सद्भावों को व्यक्त करने वाले हैं। अर्थात् इनमें अनुराग, प्रणय और प्यार का स्वर सर्वोपरि प्रकाशित हुआ है। कैलाश गौतम कहते हैं–

"प्यार
हमारा मित्र–यार
हम कभी न छोड़ेंगे
जनम–जनम का संस्कार
हम कभी न छोड़ेंगे।
दुःख में सुख में
साथ–साथ का
जीना मरना है
अँजुरी का खाली होना
अँजुरी का भरना है
यही हमारी मुख्य धार
हम कभी न छोड़ेंगे।"[4]

देवेन्द्र शर्मा इन्द्र ने भी इस आत्मीयता को बड़ी ही गहरी संवेदनाओं के साथ स्वीकार करते हुए अपनी गीत प्रतिमा को बेटी की आत्मीय संवेदना से जोड़ा है वह कहते हैं –

"यह सदाबहार भावना की बेटी

जो पली अभावों के घर में रह कर
नकली भीड़ों का शोर नहीं इसमें
यह तो वैयक्तिकता का दर्पण है
मंचों के मिथ्या आश्वासन वालो
यह मंदिर का एकान्त समर्पण है
जीवन यथार्थ से गाँठ जुड़ी इसकी
कब चली निरे आदर्शों को गह कर।"[5]

देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र' आत्मीय संवेदनाओं के संदर्भ में न तो परिवर्तित मूल्यों को ध्वस्त होते देखना चाहते हैं और न ही सामयिक नयी मान्यताओं के विरुद्ध कोई वक्तव्य देते दिखाई पड़ते हैं। भारतीय पुरा-संस्कृति के पक्ष में उनकी गौरवपूर्ण अभिव्यक्ति देखिए-

''जिसे सदानीर कहते
वह सरिता
सूखी है
शोर मचाता
गँदला पानी
अब कुछ तालो में
मरी मछलियों की
बू आती
बूढ़े जालों में
मछुआरों के
गीतों की वह
बानी रूखी है।''[6]

इस तरह के पारिवारिक परिवेश को उजागर करने वाले तथा आत्मीय संबंधों की अहमियत व्यक्त करने वाले कथ्य अधिकांशतः देखे जा सकते हैं।

सांस्कृतिक मूल्यों के प्रति लगाव

हालाकि नवगीतकारों ने सामाजिक और राजनीतिक परिवेश में बहुत कुछ व्यंग्यात्मक तथ्य उद्घाटित किये हैं, किन्तु भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों के प्रति उनका

लगाव सदैव बरकरार रहा है। नीम के पेड़ की हरी छाँव, जंगल से गुजरती गाँव की पगडंडी, चौपाल पर जुड़ती सांस्कृतिक सभाएँ, जन्म, विवाह आदि के मनोरम पर्व मेलों और त्योहारों का सांस्कृतिक गौरव तथा अविभाज्य परिवार में देवन्दिनी के प्रेम भरे प्रसंगों का पर्याप्त वर्णन यहाँ देखा जा सकता है। ग्राम्य परिवेश का सांस्कृतिक चित्रण करते हुए देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र' टूटते हुए सांस्कृतिक मूल्यों के प्रति भी चिन्तित नजर आते हैं वह कहते हैं-

''गाँव, जनपद, राजधानी
एक-सी सबकी कहानी
हर जगह है
विभाजकता
जाति, वर्णों के शिविर है
हर व्यवस्था के विवर में
दीमकों-सी
अराजकता
भखो भाषण, पियो प्रवचन
सिर्फ दुर्लभ अन्न-पानी।[7]

इन्हीं बिम्ब चित्रों को आँचलिक परिवेश में रचता हुआ कवि कहता है-

फूल अलसी और सरसों के
फिर नहीं वैसे कभी फूले
है कहाँ वे नीम औ' बरगद
डाल जिनकी थाम कर झूले
बन्धु !
गँवई गाँव से चलकर
आ बसे हम राजधानी में।''[8]

वैसे तो कवि ने नगरीय जीवन की संवेदनहीनता और आरोपित मूल्यों के तहत समझौतावादी दृष्टि को ही सामने रखा है, किन्तु कहीं भी वह इस अचीन्हीं भीड़ के आगे आत्म-समर्पण नहीं कर पाया है। कवि ऐलान करता है कि पुरावर्तित जीर्ण मूल्यों को बहुत दूर तक नहीं घसीटा जा सकता। राग की नयी लय नयी पीढ़ी को रससिक्त बनाये

और जीवन दर्शन के नये रागात्मक आयाम भी दे इसके लिए कवि प्रयत्नशील है। वह कहता है-

''मञ्च यह खाली करें, आओ।
हमें गाते-गुनगुनाते
बहुत दिन बीते
स्वरों की प्रतियोगिता में
कभी हारे, तो कभी जीते
लोग सुनना चाहते अब
और लोगों को
बन्धु ! मत बूढ़े स्वरों से
इस सभा को और ललचाओ।''[9]

डॉ. मीनू खनेजा ने ठीक ही कहा है आज के आपाधापी युग में मूल्यनिष्ठ ईमानदार नागरिक राजनीतिज्ञों को कुटिल नीति के कारण शोषण का शिकार है वही साम्प्रदायिकता के नाम पर कुछ लोग निर्दोष लोगों की हत्या कर विष घोल रहे हैं-

''हिंसा की टहनी पर
फैल रही विभाजकता।''[10]

कवि देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र' ने नवगीत का वर्ण्य अपने आसपास से टटोला है। प्रकृति और नारी के प्रति उनका सम्मोहन सर्वत्र देखा जा सकता है नारी का एक उदात्त स्नेह इन पंक्तियों में देखिए :-

''तुम कि जैसे
क्षीर सागर में
सद्यस्नाता लयवती पूनम
छेड़ती मरु के
दिगन्तों में
शबनमी अभिसार की सरगम
मौन का अभिशप्त आखर मैं
रागिनी स्वर पंखिनी हो तुम।''[11]

कवि देवेन्द्र शर्मा इन्द्र ने जो कुछ भी कहा है वह अपने आस-पास के माहौल से जोड़कर कहा है। उनके कथ्य में पारिवारिक अनुबन्धन भी है। सामाजिक सरोकार भी

राजनीति की विद्रूपताएँ भी हैं और जीवन मूल्यों के गहन दर्शन की अभिव्यक्ति भी है। कवि वर्तमान के कालातीत संबंध सूत्र को अतीत के अक्षुण्ण स्मृति के साथ रचा-बचाकर व्यक्त करता है। कवि जीवन के खंडित रथ चक्र को कंधे पे उठाये हुए समसामयिक विभिषिकाओं के महारथियों से जूझता हुआ अपनी नैराश्य पर हँसता हुआ कहता है-

''खण्डित रथचक्रों की डोर पर
कुण्ठित शर साधे हम
व्यूह में धँसे
सात महारथियों के सामने
अपनी लाचारी पर
हम स्वयं हँसे।''[12]

कवि ने अपनी सृजन-धर्मिता में जीवन के मानद-मूल्यों की प्रतिष्ठा की है। वह अपने भावों और विचारों को अपने वैयक्तिक निरधारणों के साथ व्यक्त करता रहा। समाज राष्ट्र और संस्कृति के प्रति उसकी सोच और अपनी दृष्टि है।

डॉ. लक्ष्मण प्रसाद नायक देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र' के नवगीतों के कथ्य को स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि - ''कवि अपने नवगीतों में प्रकृति के वैविध्यपूर्ण परिदृश्यों में अपनी सोच को केन्द्रित करता है। अधुनातम काव्य-धारा प्रकृति की अनुकृति न होते हुए भी उसकी आकृति से बहिष्कृत नहीं है।'' प्रो. देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र' अपने नवगीतों में प्रकृति की अनुकृति के माध्यम से हमें बहुत कुछ सामाजिक यथार्थ का भाव प्रकृतिस्थ प्रमाणित कर देते हैं - 'और एक वर्ष' कविता का प्रारम्भ ही इसी प्रकार करते हैं-

''जालों-सी
तालों में फैली
मटमैली नभ किरनों को
चीते की
चितकबरी आँखों से।''[13]

कवि नगरीय जीवन के आचरणों का व्याकरण रचने हेतु आवरण हटाते हुए कह उठता है-

''भूख-प्यास
हाश-नाश
संशय-संत्रास जड़ित जीवन।''[14]

कवि प्रकृति का आवरण हटाता नये-नये संदर्भों में कहता है-

''नट-खट शैतान-सा
दूध के उफान-सा
नीले तूफान-सा
आया था
चुपके से गुजर गया।''[15]

पग-पग पर प्रकृति वेश में कवि की कविता सिहर उठती है, गा उठती है, जाग उठती है **'कुतर गया चूहे सा वक्त के कलेण्डर की पथरीली सीढ़ी से उतर गया - शब्दमूढ़-अर्थगूढ़ गीतों का, गीतों के माध्यम से प्रकृतिस्थ मानव मन में जन-जन जीवन के लिए।'**

कवि देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र' ने सामाजिक और राजनीतिक व्यवस्था में व्याप्त असंतुलन को विभिन्न पहलुओं से जाँचा-परखा है। वह किसी भी मत का केवल विरोध के लिए विरोध नहीं करते और किसी भी अनीति और अन्याय का समर्थन भी नहीं करते। महाकवि कालिदास के अनुरूप - ''पुराणमित्येति न साधु सर्वम्'' के वे पक्षधर हैं। जहाँ एक ओर वे राजनीति में व्याप्त दुर्गन्ध फैलाने वाले महारथियों से कहते हैं-

''बहुत हो चुका
यह नाटक
अब इसको बंद करो
धुआँ उगलती
इस ढिबरी की
लौ को मंद करो
हमने तो हर सभा-मंच पर
तुम को ही देखा
मर्यादा की तुमने तोड़ी
हर सीमा-रेखा
भीड़ों के नायक-प्रतिनायक
रहे बहुत दिन तुम
विस्मृति के
एकान्त देश में

अब आनन्द करो

छल से दाने डाल

खगों को वश में कर लेते

सहलाते-सहलाते

उनके पंख कतर देते

रटे हुए संवाद तुम्हारे

फिर वे दुहराते

तुम पिंजरे में कैद

पंछियों को

स्वच्छन्द करो

कटु वचनों के वाण और

कब तक बरसाओगे

ऋषि-आश्रम के महिमा-मृग को

मार न पाओगे

धाराओं के व्यूह तोड़

सूरज तो चमकेगा

मिथ्या वचनों को

चाहे तुम

और बुलन्द करो।''[16]

वहीं दूसरे ओर कवि पुरावर्तित आस्थाओं के प्रति भी अपनी सहमती व्यक्त करता हुआ कहता है-

''परम्पराओं को

दफनाया

नये प्रयोगों ने

पर्वत को

नीलाम कर दिया

बौने लोगो ने

धुन्धभरा आकाश

धूप की

उखड़ गयी मण्डी।''[17]

कवि अपने नवगीतों में वायवी परिकल्पनाओं के आधार पर किसी स्वप्नजीवी कथा का निरूपण नहीं करता, बल्कि वह अपनी दैनन्दनी में समाहित रोजमर्रा की जिन्दगी को इन गीतों में समाहित करता है। इन गीतों का वर्ण्य कवि के आस-पास की परिस्थितियों से ही सम्पृक्त है ऐसा लगता है जैसे ये नवगीत कवि की उँगली थाम कर उसके साथ-साथ घर आँगन की देहली में बैठकर बतियाते से लगते हैं तो कभी उसके पास-पड़ोस में, गली-मुहल्ले में, कॉलोनी या सोसायटी में फ्लैट या टेनामेन्ट में रहने वाले उसके निकटस्थ संबंधियों से रु-ब-रु होते नजर आते हैं। इन नवगीतों में समाज की खुशियाँ हैं, परिवार के आनन्दोत्सव हैं, गाँव के मेला त्योहार हैं। शादी और व्याह पर गूँजते लोक रागों के साथ मन के उल्लास हैं, मादल है, बंसी है अलगूंजा है, पखावज है, मृदंग है, झाँझ है, शहनाइयाँ हैं, ढोलक हैं और इन थापों पर ठुमकती हुई बेटियाँ हैं, भतीजी, भांजियाँ हैं। हाथों में मेंहदी और पैरों में महावर लगाये हुए नव वधुएँ हैं, भौजाइयाँ हैं, भाभियाँ हैं। कुए की जगत पर बैठे आल्हा गाते गाँवके नवयुवक हैं। पनघट पर जाती चंचल किसोरियाँ हैं। हँसते मुस्कुराते बच्चे हैं। वात्सल्यमयी माँ हैं, आश्रय और सान्त्वना का आशीष देता पिता है। परिवार की कल्याणमयी भावनाओं को शुभाकांक्षाएँ देता हुआ वट-वृक्ष सरीखा पितामह है। भजन-कीर्तन के स्वरों को अलापती हुई बूढ़ी दादी है। पास-पड़ोस के संकीर्तन हैं। लोकोत्सवी सांस्कृतिक त्योहारों की आत्मीयताएँ हैं और साथ में संयुक्त परिवार की खुशियाँ और आनन्द से भरी हुई आत्मीय संबंधों की सुगन्धें हैं।

इन नवगीतों में दूसरी ओर अभावजन्य पीड़ाएँ हैं आँसू हैं, तकलीफ हैं, शोषण हैं, संत्रास हैं, दमन हैं, कुण्ठाएँ हैं। भूख है, प्यास है, उदासियाँ हैं, घुटन है, विलाप है और वक्त की आधुनिक संत्रस्त एवं आरोपित अवधारणाओं से ग्रस्त विभीषिकाओं के टूटते नैतिक विश्वास हैं। सांस्कृतिक आस्थाओं की ढहती महल हैं और राजनीतिक दुशचक्रों के आरोपित अभिशाप हैं।

नवगीत के वर्ण्य के विषय में कुँअर बेचैन ठीक ही कहते हैं कि – ''गीत के प्रमुख विषय-प्रेम, सौदर्न्य, भक्ति, आध्यात्म और प्रकृति रहे हैं। वर्तमान युग में समालोचकों ने प्रमुखतः नयी कविता के कवियों ने यह कहना प्रारम्भ कर दिया था कि गीत विधा वर्तमान युग के संत्रासों, विभीषिकाओं विसंगतियों एवं विद्रूपताओं को अभिव्यक्त करने में अक्षम है। गीतकारों ने उनकी इस टिप्पणी को खारिज करते हुए गीत में वर्तमान समसामयिक

परिस्थितियों को समाहित किया, इसी कारण गीतों की भाषा की प्राञ्जलता में कुछ कमी आई। गीतकारों ने एक ओर अपने गीतों में देशज और लोक-भाषा के शब्दों को स्वीकार किया या यों कहें कि लोक-भाषा में भी गीत लिखे तो दूसरी ओर बोल-चाल के शब्दों में गीत प्रयोग किए।''[18]

वर्तमान गीतकारों ने वर्ण्य के संदर्भ में कोई नयी शोध या स्थापनाएँ सामने नहीं रखीं बल्कि समाज और परिवार के समूचे वृत्त को ही अपने ढंग से गीतांकित किया है। देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र' के वर्ण्य का पटल अत्यधिक विस्तृत रहा है। जिन्दगी की हर धड़कन को, आँसू और मुस्कान को साथ लेकर वह चले हैं। उनके गीतों का लोक-विस्तार भी दूर-दूर तक प्रसरित है। अधिकांशतः उनके गीतों में व्याप्त कथ्य का पटल आंचलिक सांस्कृतिक परिवेश ही रहा है। यह परिवेश मुख्य रूप से उतरांचल और राजस्थान का कहा जा सकता है। जहाँ भारतीय संस्कारों के तहत पारिवारिक मूल्य निर्धारित होते हैं।

यदि सुविधानुसार देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र' के गीत-वर्ण्य को स्पष्ट करें तो इनमें आत्म-परक, व्यक्तिपरक, संस्कृतिजन्य, व्यष्टिपरक और समाजोन्मुखी मूल्यपरक अभिचेतना सर्वत्र व्याप्त है। कवि के आत्मपरक कथ्य उसके स्वाभिमान को या उसके आत्मगौरव को सामने रखते हैं। **'हम जीवन के महाकाव्य हैं केवल छंद प्रबन्ध न समझो।'** जैसे गौरवान्वित उद्घोष उनकी अपनी विशिष्ट पहचान का द्योतन कराता है।

उनके जीवन के कटु अनुभवों की एक स्पष्ट छाप भी इनके नवगीतों में आभासित होती है। पत्नी का देहावसान, मंदबुद्धि पुत्री के दैनंदिन परिपोष का अतिरिक्त भार, भीड़ में एकान्त का अनुभव करती संवेद्य मानसिकता, वृद्धपिता की सुश्रूषा तथा पारिवारिक बिखरते मूल्यों को संजोने में क्षण-क्षण विघटित एवं अनास्थाओं के प्रकरण वह सहते रहे हैं।

आधुनिक समाज व्यवस्था की सड़ाँध भरी परम्परा ने उनके अपने मापदण्डों को खण्डित किया है। राजनायिकों के दोहरे चरित्र और भ्रष्टाचरण उन्हें अवसादित करते रहे हैं। अनेक अनैतिक अनुबंधित समझौते उन्हें विचलित करते रहे हैं। किन्तु हारना, परास्त होना या थककर भाग जाने की मनः स्थिति को उन्होंने स्वीकार नहीं किया। नवगीतों की रचना में उन्होंने कोई विशिष्ट मार्ग प्रतिष्ठापित नहीं किया। अपनी लय, अपनी धुन अपने कथ्यों पर ही गुनगुनाते रहे हैं।

देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र' रुढ़िवादी परम्पराओं के अंधानुकरण में विश्वास तो नहीं करते, किन्तु भारतीय सांस्कृतिक आस्थाओं के प्रति वे संवेदनशील अवश्य हैं। राजनीतिक

विद्रूपताओं के प्रति उनके व्यंग्यात्मक प्रहार तथा कटु–उक्तियाँ प्रभावक ढंग से सामने आती हैं। समाज की सामयिक व्यवस्था का टूटता कबंध और आरोपित अनास्थाओं के अतिभार उन्हें स्वीकार्य नहीं हैं। उन्हें तो अपने निर्धारणों को ही सामने रखा है।

हिन्दी–काव्य की सर्वाधिक सक्षम विधा यही 'नवगीत' है, जिसमें राग है, रंग है, रस है, छन्द है, लय है, गति है, आकर्षण है, संवेदना है, कल्पना है, बिम्ब है, प्रतीक है और एक नयी सोच है जो श्रोता या पाठक को आम–आदमी की सहज जिन्दगी से साक्षात्कार कराती है। नवगीतों में प्रकृति का अपरिमित सौन्दर्य है। आम के वृक्षों की कतारें हैं, इमली एवं अमरूद के पेड़ हैं, बरगद की छाया है, ताड़ एवं खजूर के छायाहीन वृक्ष हैं। लताएँ हैं, बेले हैं, अंगूर के बागान हैं, करील की झाड़ियाँ हैं, धान एवं गेहूँ की झूमती फसले हैं, अलसी एवं सरसों की सुन्दर और मनमोहक लहराती फसलें हैं, उजाड़ एवं मैदानी हरीतिमा है, जहाँ कलरव करते तोता, कबूतर, मैना, कोयल, बुलबुल गोरैया तथा बया पक्षी हैं तो दूसरी ओर कौवे चील, बाज और गिद्ध जैसे क्रूर और हिंसक पक्षी भी हैं। जहाँ वृक्षों की डालियों पर दौड़ती भागती गिलहरियाँ हैं, वहाँ फुदकते खरगोश हैं, चौकड़ी भरते हिरन हैं, डाल–डाल पर झूलते–कूदते–फाँदते बन्दर हैं, दहाड़ मारते शेर हैं, तो लोमड़ी, सियार, भेड़िया, गीदड़, रीछ तथा ऊदबिलाव जैसे वनचर भी हैं। यहाँ नगरों की अभिजात संस्कृति है, वैज्ञानिक उपलब्धियाँ हैं, शोक के आमोदपूर्ण क्षण हैं, राजभवन हैं, अट्टालिकाएँ हैं, हवेलियाँ हैं, भवन हैं, तो यहाँ गाँव की सौंधी–सौंधी गन्ध भी है, मिट्टी की खुशबू है, खेत हैं, खलियान हैं झुग्गी–झोपड़ियाँ व कच्चे मकानों की कतारें हैं, कच्ची सड़के और पगडंडियाँ हैं, ठाकुरों एवं जमीनदारों की हवेलियाँ हैं। पंचायती चौपाले हैं, देहात हैं, तहसील हैं, कस्बे हैं, मेले व त्योहार हैं। यहाँ बेराजगारी से जूझता हुआ नयी पीढ़ी का जवान लड़का है, दहेज के अभाव में प्रौढ़त्व प्राप्त करती बेटियाँ हैं कर्ज और मुकदमें का मारा बूढ़ा गृहस्थ है, पेट के लिए कड़ी धूप में हल चलाता गरीब किसान है, बार–बार कर्मों को कोसता और पत्थर के देवी देवताओं को पूजता अन्दर से टूटा थका, हारा मजदूर है। शादियाँ यज्ञोपवीत, मुंडन, नामकरण, बरसी, चौबरसी, श्राद्ध जैसे पौराणिक संस्कार हैं, नयी बहू का आगमन है, महावर, मेंहदी, सिन्दूर, बिन्दी, काजल, ओढ़नी, फरिया, लहेंगा, पायल, नथुनी, बाली, पैंजनी तथा कंचुकी जैसी सांस्कृतिक विरासतें हैं। यहाँ खीझ है, आक्रोश है, इन्कलाब है, क्रांति है और भी बहुत कुछ है, जो एक आम आदमी की सोच में लिपटा हुआ है।

छायावादोत्तर गीति-काव्य से लेकर 'नयी कविता तक की गीत-धारा यद्यपि चलायमान रही, किन्तु नयी कविता तक आते-आते वह मानो दलदल में फँस गयी और संदेह व्यक्त किया जाने लगा कि कहीं वह खत्म तो नहीं हो गई, लेकिन ऐसा हुआ नहीं और हो भी नहीं सकता। मानवीय रिश्तों की लालसा लोक-जीवन की स्पृहा को कदाचित् तब तक नहीं त्याग सकेगी जब-तक मनुष्य जीवन की अखण्डता में हमारा विश्वास बना रहेगा। छायावादी गीतों में व्यक्तिगत जीवन के सुख-दुःख के अतिरिक्त राष्ट्रीय स्वातंत्र्य की आकांक्षा और भारतीय पुनर्जागरण का गम्भीर स्वर भी स्पष्ट सुनायी पड़ता है।

शिल्प के स्तर पर भी ये गीत परम्परागत गीत-धारा में प्रतिनिधि कड़ी बनकर नये तेवर लिये हुए थे, अर्थात इन गीतों में पूर्ववर्ती गीतों की अपेक्षा सब कुछ नया था, पर उस समय इन्हें 'नवगीत' की संज्ञा से अभिहित नहीं किया गया। इन्हें आधुनिक गीत ही कहा जाता था। साधारणतः नयी कविता के ही समानान्तर 'नवगीत' का बीज वेपन भी हुआ। नयी कविता और नवगीत में विशेष अन्तर यह है कि नयी कविता युगीन यथार्थ को मुक्त छन्दों में देखती है और नवगीत उसे लयात्मक बोध देता है। यहीं आकर पारम्परिक गीत-विधा मंद होती है और नवगीत के माध्यम से मानवीय रिश्तों को व्यापक आयामों से जोड़ती है। गीतों की इस बृहत्तर भूमिका का प्रारम्भ यद्यपि निराला के गीतों से हुआ यह बदलाव 1950 ई. के बाद की गणतन्त्रीय चेतना के दौरान ही हुआ है। प्रगतिवाद का उथलापन और प्रयोगवाद का प्रयोगाधिक्य बरसात के पानी की तरह बह गया और धीरे-धीरे नवगीत में मिट्टी की सौंधी-सौंधी खुशबू अपने नैसर्गिक रूप में महकने लगी। नवगीत के बिम्बों, प्रतीकों, छन्दों उपमानों एवं उसके कलात्मक उपादानों में व्यक्तिवादी स्वर लुप्त होने लगा और वास्तविकता का एक नूतन तेवर उभरने लगा-यही नवगीत है।

नवगीत अपने आप में एक निरपेक्ष सृष्टि न होकर सापेक्षता का हलफनामा लेती हुई दिखाई पड़ती है। यह व्यक्तिवादी पीड़ाओं से हटकर लोक-जीवन की धुनों, रागों, रागिनियों, समस्याओं, महानगरीय संत्रासों, मानवीय संबंधों व राजनीतिक संदर्भों मानवीय संबंधों व राजनीतिक संदर्भों आदि को चित्रांकित करती हुई स्वयं को पारम्परिक गीत-धारा से पृथक कर लेती है।

शुद्ध लौकिक मानवीय अनुभूति से सम्पन्न आम बोल-चाल की भाषा में जीवन के यथार्थ को रेखांकित करने वाले गीत ही नवगीत के निकट माने गये। ऐसे गीतों का

आरम्भ 'बेला (1843)' संग्रह से माना गया है। 'पाँच जोड़ बाँसुरी' के संकलनकर्ता चन्द्रदेव सिंह ने भी नवगीत का आरम्भ निराला के 'बाँधों न नाव इस ठाँव बन्धु' तथा 'आज मन पावन हुआ है' (1850-52 ई.) गीतों से माना है। निराला के बाद वाले संग्रहों में जो नये ढंग के गीत है, उनमें शुद्ध लौकिक और मानवीय अनुभूति की अभिव्यक्ति हुई है। इस तरह के सर्वाधिक गीत उनके गीत संग्रह 'बेला' में उपस्थित हैं। बेला का यह गीत अजनवीपन की भावना की अभिव्यक्ति करने के कारण आधुनिक अस्तित्ववादी प्रवृत्ति का परिचायक है-

"बाहर मैं कर दिया गया हूँ
भीतर पर भर दिया गया हूँ।
ऊपर वह वर्फ गली है,
नीचे यह नदी चली है,
सख्त तने पर नर्म कली है
इस तरह हर दिया गया हूँ।"[19]

'बेला' के कुछ गीतों में सहज और मोहक दृश्यों का चित्रण किया गया है, तो कुछ में सामाजिक अव्यवस्था और वैषम्य पर गहरा व्यंग्य है। निराला के गीतों में समकालीन यथार्थ की तीखी आँच का स्पष्ट एहसास है-

"वेश-रुखे, अधर सूखे
पेट भूखे आज आये।
हीन जीवन, दीन चितवन
क्षीण आलम्बन बनाये।"[20]

'बेला' की इस गीत में कवि का तीव्र मानसिक आवेग एवं दीन-दुखियों के प्रति हार्दिक सहानुभूति का स्वर सुनायी पड़ता है। 'अणिमा' में संग्रहीत 'गहन है यह अन्धकारा' में निराला का मन तीब्र आघात सहता हुआ तरह-तरह के स्वर सुनता है और विविध दृष्यों के दर्शन करता है-

"गहन है यह अन्धकारा
स्वार्थ के अवगुण्ठनों से
हुआ है लुण्ठन हमारा।
खड़ी है दीवार जड़ को घेर कर
बोलते हैं लोग ज्यों मुँह फेर कर

इस घर में नहीं दिनकर,
नहीं शशिधर नहीं तारा।''[21]

निराला के गीतों का भाव-फलक बहुआयामी और विस्तृत है। उनके गीतों में संघर्षरत-जन-सामान्य की धड़कने ध्वनित हैं। उनकी सर्जना के उत्स में अवधी और व्रज का लोक-जीवन भी है, जिसमें उनके गीत एक विशेष भाव-भूमि की अपेक्षा लिए जन सामान्य की विचार-भूमि के संवाहक बने। उनके गीत जटिल होते जा रहे जीवन की गहन अनुभूति धारण किये सुख-दुःख, राग-विराग, अभाव, वैषम्य, शोषण, पीड़ा, हार-जीत, सामाजिक विसंगति, मानव मन का अन्तर्विरोध आदि विविध आयामों सहित समकालीन समय-बोध से अधिकाधिक समपृक्त होने के कारण पारम्परिक गीत में एक नवीन प्रयोग करते मिले, किन्तु 'अपनी ध्वनि', 'अभी न होगा मेरा अंत' (1924 ई.), 'आये घन पावस के' (1928), 'रूखी री यह डाल' (1932), तथा 'दलित जन पर करो करुणा' (1938) आदि गीत भी जो ठीक छायावादी कालावधि में लिखे गये हिन्दी-काव्य-प्रासाद में नवगीत की साफ-साफ दस्तक देते हैं। तीसरे और चौथे दशक में लिखे गये निराला के ये गीत कथ्य और शिल्प दोनों ही स्वरों में पारम्परिक गीत से बिलकुल भिन्न थे। इस प्रकार नवगीत के प्रभात की लालिमा निराला के पाँचवें दशक से पूर्व प्रकाशित छायावादी गीतों में ही विद्यमान थी।

स्वयं डॉ. शम्भुनाथ सिंह का मानना है कि - ''यदि परम्परागत भाषा घिसे-पिटे छन्दों और भावों के प्रति विद्रोह कर के आम जनता की भाषा में बिम्बों और प्रतीकों के माध्यम से यथार्थ जीवन की कटु एवं तिक्त अनुभूतियों और विविध मानवीय दशाओं को नवगीत की मौलिक विशेषता मान लिया जाय तो नवगीत का प्रारम्भ सन् 1920-21 में ही हो गया था। जब निराला के गीत-'मातृवन्दना' और 'शैष' प्रकाशित हुए थे।

आरम्भ में नये प्रकार के गीतो की धारा मुक्त छन्द वाली 'नयी कविताएँ' के आन्दोलन में पूर्णतः सम्पृक्त थी। अज्ञेय द्वारा सम्पादित सप्तकों में अज्ञेय, रामविलास शर्मा, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, धर्मवीर भारती, नरेश मेहता, केदारनाथ सिंह, कुँअर नारायण और विजयदेव नारायण साही के अनेक ऐसे गीत संकलित किये गये थे, जो पारम्परिक गीत नहीं थे। सप्तकों के बाहर के कवियों में डॉ. शम्भुनाथ सिंह, केदारनाथ अग्रवाल, जगदीश गुप्त व ठाकुर प्रसाद सिंह के कई गीत नयी कवितावादी पत्रिकाओं - 'प्रतीक', 'निकष', 'नयी कविता', 'नये पत्ते', 'गीत', 'कविता', 'वातायन', 'लहर'

आदि में प्रकाशित होते रहे। इस तरह यह स्पष्ट हो चुका है कि नवगीत की रचना नयी कविता के साथ ही प्रारम्भ हो चुकी थी, किन्तु उसे पृथक पहचान नहीं प्राप्त हो सकी थी।

देश की बदलती हुई सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक परिस्थितियों तथा उत्तरोत्तर बढ़ते हुए वैज्ञानिक व औद्योगिक प्रभाव से भी काव्य को नयी दिशा में मुड़कर अनुभूति के नये और अछूते आयामों को उद्घाटित करने के लिए विवश किया। परिणामतः छायावादोत्तर युग के दूसरे दशक (1950-60 ई) में पुनः गुणात्मक परिवर्तन हुआ और हिन्दी कविता की विभिन्न धाराओं का पारस्परिक संश्लेषण हुआ और उनकी वादग्रस्त भूमिकाएँ प्रयाप्त सीमा तक समाप्त हो गई। अब कविता का जो भी रूप सामने आया उसे नयी कविता की संज्ञा दी गई। इसमें व्यक्तिवादी, स्वच्छन्दतावाद, प्रयोगवाद और प्रगतिवाद की प्रवृत्तियाँ तो थीं, किन्तु उनकी पृथक पहचान प्रायः लुप्त हो चुकी थी। इन सभी धाराओं के प्रमुख नये कवि एक कविता मंच पर एकत्र हुए और इस नवीन काव्य-धारा में सभी काव्य-विधाओं को निःसंकोच भाव से अपनाया गया। 'नयी कविता' इसी मंच के तत्वावधान में इलाहाबाद से डॉ. जगदीश गुप्त के सम्पादन में 'नयी कविता' 'एक त्रैमासिक' पत्रिका का भी प्रकाशन हुआ। इस पत्रिका में छन्दोबद्ध एवं मुक्त छन्द की कविताएँ, छन्द मुक्त गद्य की लयात्मक कविताएँ तथा टेकयुक्त और पदबद्ध गीत भी प्रकाशित होते थे। किन्तु उस समय गीत-विधा को नयी कविता से अलग नहीं माना गया था।

गणतन्त्रीय व्यवस्था के बाद रचनाकार स्वतंत्र रूप से जमीन के अधिक नजदीक आ चुका था और नये ढंग से उसकी हर धड़कन और समस्या को शब्द देने लगा था। जाहिर है, ऐसे में गीत के परम्परित विधान का विखण्डन अनिवार्य था। ऐसी व्यवस्था में गीत रागात्मक क्षणों का उच्छ्वास मात्र नहीं रह गया बल्कि जन-सामान्य के जीवन से संलग्न होकर उसने अपने अन्दर थोड़ी बौद्धिकता, लोकधुनों तथा लोक-जीवन की धड़कनों को भी समाविष्ट किया। इस तरह उसका विषय अपनी सीमित परिधि को अचानक तोड़ने लगा था। यह गीत की नयी चेतना थी। यद्यपि इस नव-चेतना की अभिव्यक्ति सर्वप्रथम निराला के गीतों से हुई थी, उन्होंने पहले गीत के छन्द, राग और लय में बहुत कुछ तोड़ा और नया जोड़ा भी था, लेकिन बौद्धिक दुरूहता के कोहरे में गीत की यह नयी चेतना निरन्तरता नहीं पा सकी और सन् 1950 के बाद ही इसे पुनः मुखरित होने का अवसर मिल सका। यह नवगीत की गीतात्मक चेतना अपने वस्तु शिल्प एवं दर्शन की दृष्टि से अपनी परम्परा से प्रयाप्त भिन्न थी। पूर्ववर्ती पारम्परिक गीतों की तुलना

में यह नया रूप, अत्यधिक, पृथक था। इस प्रकार 'नयी कविता' और नये गीत की सम्पृक्तता ज्यादा समय तक नहीं टिक सकी। यदि 'नयी कविता' में इतना विखराव न आ गया होता तो शायद नवगीत को तीव्रता से विकसित होने का अवसर न मिला होता। सहृदय सामान्य साहित्य-प्रेमियों ने अपनी सहज बुद्धि एवं काव्यत्व के नैसर्गिक मानवीय बोध के आधार पर इस ह्रासोन्मुख 'नयी कविता' को कविता मानने से ही इनकार कर दिया।

नयी कविता के अन्तर्गत सम्मिलित गीत काव्य का रूप-शिल्प पूर्णतः बदला हुआ था, जिसे अज्ञेय ने नयी कविता का गीत कहा था। तदनन्तर इसी गीत के विकसित रूप को 'नवगीत' से सम्बोधित किया गया। इस सम्बन्ध में अनेक कवियों और आलोचकों ने अपनी अलग-अलग मान्यताएँ दी हैं, किन्तु लगभग सभी ने यह अवश्य माना है कि इस नवीन गीतात्मक चेतना को 'गीत' नहीं कहा जाना चाहिए। क्योंकि कहीं न कहीं 'गीत' शब्द पारम्परिक चौखटे का आभास देता है और इस कारण उसमें नवीनता का बोध नहीं हो पाता है। अतः इस नूतनता-बोध के लिए गीत को नयी संज्ञाओं से अभिहित करने के प्रयास जोर-शोर से चल रहे थे। ''सियाराम शरण प्रसाद ने गीत के इस नये स्वर को 'आज का गीत' नाम दिया तो बाल स्वरूप राही और शलभ श्री राम सिंह ने इसे 'नया गीत' कहा। ओम ठाकुर और गंगा प्रसाद विमल ने इसे 'आधुनिक गीत' कहना पसन्द किया, किन्तु रामदरश मिश्र ने अपने एक निबन्ध में इसे 'नये गीत' नाम दिया। ''अन्ततः राजेन्द्र प्रसाद सिंह ने इस नवीन गीत विधा को एक नयी संज्ञा प्रदान की - नवगीत। गीतांगिनी के सम्पादकीय में उन्होंने न सिर्फ इस शब्द का प्रयोग किया बल्कि अपने सहयोगियों के समवेत प्रयत्न से आधुनिकता के संदर्भ, बिम्ब और उसकी तात्विकता के आधार पर नवगीत का विवेचन विश्लेषण भी किया। स्वयं राजेन्द्र प्रसाद सिंह के शब्दों में -''गीतांगिनी के सहयोगियों ने आधुनिकतर गीत, बिम्ब गीत, तात्विक गीत आदि कुछ नामों का सुझाव दिया था, किन्तु उन्होंने गीतों की संभावना को काल प्रवृत्ति और शिल्प की एकान्तिक सीमा में बाँधना चाहा था, तभी नवगीत की संज्ञा दी। नयी कविता के कवियों द्वारा प्रस्तुत गीत पिछली पीढ़ियों के परवर्ती और ईषत भिन्न गीत और छायावादोत्तर विवेक कल्प गीतकारों के नवयोजित गीत कोई श्रेणिक नाम नहीं पा सके थे। साथ ही नयी पीढ़ी के गीतकार भी अपने सहज नूतन गीतों के लिए ऐसे नाम खोज रहे थे। अन्ततः 'नवगीत' संज्ञा ही सर्वाधिक उचित प्रतीत हुई।'' तदनन्तर अपनी

संक्षिप्तता एवं अभिनवता के कारण 'नवगीत' सर्वमान्य और प्रचलित हो गया और 1950 के बाद लिखे जाने वाले गीतों को 'नवगीत' कहा जाने लगा।

आत्मानुभूति रागात्मकता, सहजता, संगीतात्मकता, संक्षिप्तता एवं प्रभावान्विति व तरलीकृत शैली गीत के तत्व हैं। नवगीत के एक ओर तत्व-निर्धारण की रुढ़ि को अस्वीकार किया है और दूसरी ओर उपर्युक्त तत्वों में से जिन्हे ग्रहण किया है, उन्हें नया एवं परिवर्तित संदर्भ प्रदान किया है नवगीत ने ऐसा कर के कुछ अनुचित नहीं किया है जिससे कि उसे काव्य-क्षेत्र में बहिष्कृत कर दिया जाये। गीत की इस दशा का स्पष्टीकरण करते हुए उमाकान्त मालवीय ने लिखा है – ''कविता की पहचान के लिए उसे रेखांकित या परिभाषित करने के लिए लोगों ने हर सीमा को नकार दिया, ताकि अपने द्वारा तथा अपने लोगों द्वारा रचे गये गद्य ही नहीं, रुक्ष गद्य को भी कविता कहा जा सके। लेकिन जब गीत की बात आती है तो संक्षिप्तता, भावनात्मक ऋजुता, वैयक्तिकता आदि तक उसे घोट देने की दूरभिसंधि सिर उठाती है और गीत के प्रति हमारे शुभेच्छुओं का आग्रह/प्रेम जाग उठता है। क्योंकि हमारी आज की मानसिकता, सामाजिक परिवेश, व्यक्तित्व का दोगलापन, भूख, गरीबी व्यंग्य-विपर्यय की स्थिति आदि नवगीत का कथ्य बन सकता है और इस मुद्दे पर गीत की युगों पुरानी परिभाषा अब अपर्याप्त हो गई है, आड़े आती है।''

नवगीत ने निर्धारित परिभाषा की परिधि को निश्चय ही तोड़ा है और उसे नये शिल्पगत आयाम प्रदान किये हैं। इस दिशा में सर्वाधिक महत्वपूर्ण परिवर्तन 'आत्मानुभूति' एवं वैयक्तिकता को लेकर हुआ है। समीक्षा शास्त्रीय शैली में आत्मानुभूति को नवगीत का आधारभूत तत्व माना गया है। नवगीत में वस्तुपरकता, व्यंग्य एवं यथार्थ के आग्रह को पाकर एक संदेह यह उभरा है कि नवगीत आत्मानुभूति से एकदम शून्य है किन्तु वस्तु-स्थिति यह है कि 'नवगीत' में उसका स्वरूप पूर्णतः परिवर्तित हो चुका है। अब गीत में आत्मानुभूति का अर्थ कवि के वैयक्तिक प्रेम, विरह-मिलन जैसी स्थितियों तक ही सीमित नहीं रह गया है और न ही वह उसके व्यक्तिगत सुख-दुःख का आख्यान भर है, अपितु नवगीत के एक ओर जीवन की व्यापकतम, अनुभूतियों को काव्य-विषय बनाया है, तो दूसरी तरफ मैं के घेरे को तोड़कर उसे हम तक विस्तार देने का भरसक प्रयत्न भी किया है।

यद्यपि 'नयी कविता' के सामानान्तर 'नया गीत', 'आधुनिक गीत', 'नयी कविता का गीत', 'आज का गीत' आदि की चर्चाएँ छठे दशक के आरम्भ से ही यत्र-तत्र होने लग गयी थी किन्तु इसकी सु-स्पष्ट रूप में घोषणा सन् 1957 ई. में ही हुई। जब

इलाबाद के साहित्य सम्मेलन की कविता गोष्ठी में वीरेन्द्र मिश्र ने 'नयी कविता', 'नया गीत' मूल्यांकन की सीमाएँ शीर्षक निबन्ध को पढ़ते हुए घोषित किया– ''हिन्दी में नये गीत का जन्म हुआ है। यह नया गीत फार्म और कन्टेन्ट दोनों ही पक्षों में समृद्ध हुआ है। यह विचारणीय है कि आज की विज्ञप्त साहित्यिक शैलियों की चका-चौंध में हम कहीं गीत की दिशा में सम्पन्न हो रहे प्रयोगों तथा जागरूक विचार शैली को भुलाये नहीं दे रहे हैं।'' इस घोषणा का ठोस आधार प्रदान करने का श्रेय राजेन्द्र प्रसाद सिंह को जाता है। जिन्होंने फरवरी 1958 ई. में अपने द्वारा सम्पादित एवं प्रकाशित रचना गीतांगिनी में 'आधुनिक' युग के कुल 74 कवियों के गीतों को संकलन का रूप प्रदान करते हुए इसे 'नवगीत' संकलन की संज्ञा दी। इसकी भूमिका में 'नवगीत' के विभिन्न पक्षों पर विचार करते हुए इन्होंने स्पष्ट किया कि प्रारम्भ में नवगीत आधुनिकता की चुनौती का सामना करने की प्रेरणा से 'नयी कविता' का पूरक बनकर ही साहित्य क्षेत्र में अवतरित हुआ था भूमिका में तत्कालीन गीत-काव्य की स्थिति का विवेचन करते हुए सम्पादक ने गीतकारों को परम्परागत सीमाओं से मुक्त होने के लिए प्रेरित किया है और 'नवगीत' के आदर्श रूप का भी संकेत संक्षेप में दिया गया है – ''समकालीन हिन्दी कविता की महत्वपूर्ण और महत्वहीन रचनाओं के विस्तृत आन्दोलन में गीत परंपरा 'नव-गीत' के निकाय में परिणति पाने को सचेष्ट है। 'नवगीत' नयी अनुभूति की प्रक्रिया में संचयित मार्मिक समग्रता का आत्मीयता पूर्ण स्वीकार होगा। जिसमें अभिव्यक्ति के आधुनिक निकायों का उपयोग नवीन प्रविधियों का संतुलन होगा।''[22]

उस वक्तव्य को हम नवगीत का संक्षिप्त घोषणा पत्र मान सकते हैं। जिसमें इसकी विभिन्न विशेषताओं का समावेश संकेतात्मक रूप में ही हो गया है। अस्तु 'गीतांगिनी' के सम्पादक ने न केवल 'नवगीत' संज्ञा को सम्यक रूप से प्रतिष्ठित कर उसे सुदृढ़ आधार प्रदान किया, अपितु उसने उसके विकास की भावी दिशाओं एवं नवीन मार्गों का भी संकेत स्पष्ट रूप से दिया है। यदि नवगीत की प्रतिष्ठा का श्रेय श्री राजेन्द्र प्रसाद सिंह को दिया जाय तो अनुचित नहीं होगा।

आगे चलकर 'नवगीत' का प्रसार-प्रचार विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं, गोष्ठियों आदि के माध्यम से तीव्र गति से हुआ। 1962 में 'वासन्ती' पत्रिका में 'नये गीत'। 'नये स्वर' लेखमाला का प्रकाशन हुआ तो 'वातायन' ने तीन वर्षों (1964, 65, 66) तक गीत-विशेषांकों का प्रकाशन किया। इनके अतिरिक्त 'धर्मयुग', 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान', 'माध्यम', 'उत्कर्ष', 'गीत', 'लहर', 'कल्पना', 'ज्ञानोदय' आदि पत्र-पत्रिकाओं में

भी सन् 1964 से 1967 की अवधि के दौरान नवगीत-सम्बन्धी अनेक लेख प्रकाशित करके इसे बहुचर्चित बनाये रखा। इसी कालावधि में 'प्रज्ञा' (दिल्ली) 'साहित्यिकी' (कलकत्ता), 'रंगायन' (बम्बइ) आदि संस्थाओं ने भी नवगीत पर अनेक गोष्ठियों का आयोजन कर नवगीत की चर्चा को आगे बढ़ाने में योग दिया। साथ ही विभिन्न गीतकारों के निजी गीत-संकलनों से तथा 'कविता' - 1964 ई., 'गीत-1' (1966 ई.) 'गीत-2' (1967 ई.) और 'पाँच जोड़ बाँसुरी' (1968) आदि समवेत संकलनों से भी नवगीत को बल मिला। इन सभी माध्यमों से 'नवगीत' का स्वच्छ एवं स्पष्ट रूप सामने आया और नये प्रयोगों से युक्त नये भाव-बोध के गीत अधिक संख्या में प्रकाशित होने लगे। परिणामतः 'नवगीत' का मौन आन्दोलन अपनी चरम स्थिति में पहुँच गया और 'नयी कविता' के एक स्वतंत्र एवं शक्तिशाली प्रतिद्वन्दी के रूप में साहित्य क्षेत्र में वह प्रतिष्ठित हो गया।

साधारण रूप से गीत के नये संस्करण को नवगीत की संज्ञा दी गई है गीत और नवगीत में नये जो विशेष अंतर है वह उसके कथ्य और शिल्प को लेकर ही प्रस्तुत हुआ है। कहीं-कहीं नवगीत का कथ्य भी परम्परित गीत के बहुत करीब अनुभव किया गया है। किन्तु फिर भी नवगीत के कथ्य की जमीन परम्परित गीतों की भंगिमा से बहुत कुछ हटकर रेखांकित की गई है।

जहाँ तक वर्ण्य विषय का प्रश्न है यह कहा जा सकता है कि नवगीत का कथ्य नई सोच से सम्पृक्त है। वैसे इसका मूल स्वर गीत की रागात्मक संवेदना से एकदम पृथक नहीं कहा जा सकता।

देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र' में गीतों की रागात्मक परम्परा को एक सार्थक मोड़ देते हुए एक अनूठे अंदाज में चित्रों एवं बिम्बों के साथ प्रस्तुत किया है। वह गीतों की उदात्त पहचान को रेखांकित करते हैं। नरेश मेहता के ही शब्दों में - ''भारतीय-लोक जीवन कंधे पर गीली धोती उठाये चना-चबेना चबाते हुए अपनी विश्वास की धरती पर चलते देखता है। भले ही आज का वर्णसंकर इतिहास इन्हें कितना ही गरहित समझे, परन्तु हमारी भारतीय संस्कृति का मूल, हमारा यह लोक-जीवन ही है।''

देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र' के गीतों में कथ्य के विस्तृत पटल दिखाई देते हैं। उन्होंने आंचलिक संस्कृति से लेकर नगर की अभिजात सभ्यता को भी अपने नवगीतों में विवेचित किया है। उन्होंने कहीं भी कथ्य या प्रस्तुति में परम्पराओं का अंधानुकरण नहीं किया। वह कहते हैं कि -

''जो कुछ हूँ जैसा हूँ प्रस्तुत हूँ
मौलिक हूँ अनुकरण नहीं हूँ
इस जीवित क्षण का मैं साक्षी हूँ
मैं कल का संस्करण नहीं हूँ।
मुझसे यह आपको शिकायत है
धारा के संग मैं बह न पाया
भले नहीं डूबा उतराया हूँ
किन्तु नहीं मैं तटस्थ रह पाया,
संभव है चलने में भटका हूँ
अनुगामी आचरण नहीं हूँ।''[23]

वस्तुतः देखा जाय तो 'नवगीत' का तालमेल यथार्थवादी संचेतना से अधिक संलग्न रहा। अनेक नवगीतकारों ने इस श्रेणी में अपने नाम दर्ज कराये हैं, जिसमें प्रमुख हैं-राम सहगल, उमाशंकर तिवारी, सुधांशु उपाध्याय अमरनाथ श्रीवास्तव नागेश्वर तिवारी आदि।

इन रचनाकारों में सामाजिक यथार्थ की विद्रूपता के चित्र-दर-चित्र खिंचते मिलते हैं, किन्तु उनकी विशेषता इस बात में है कि वे कहीं भी गीतात्मक ऋजुता व व्यंग्यभाव को छोड़कर सपाटबयानी और शुष्क कथन के शिकार नहीं होते। इनमें सामाजिक विसंगतियों तथा आर्थिक प्रवंचनाओं के प्रति आक्रोश भी है और विद्रोह का भाव भी, किन्तु वह एक रचनात्मक संयम के साथ-साथ व्यक्त होता है-

''एक अंधी-अपेक्षा की खीझ में
नोचते निरूपाय अपने पर
थी न गुंजाइश
मगर अब क्या करें
उग रहीं जब नागफनियाँ खेत में
लड़ रहे इस युद्ध में
सूचियों के नाम है फिर भी
सिर्फ जीने की निरर्थक शर्त पर
रख दिया ईमान तक गिरवी।''[24]

नवगीत का सर्वाधिक सुखद और संतोषप्रद बदलाव हमें जनवादी स्वर में दिखायी पड़ता है। जब गीतकार वायवी परिकल्पनाओं के भव्य भवनों से उतरकर गाँव और कस्बों की झुग्गी-झोपड़ियों तक पैदल चला आता है। शहर की चकाचौंध से दूर वह गाँव के परिवेश की गन्दगी से रु-ब-रु होता है। वहाँ के अभावों से निर्धनता से, संत्रास और दमन से जुड़कर अपनों के बीच स्वयं को जोड़ने का साहस करता है, रुमानी कल्पना की उड़ान से उतरकर वह जमीन पर आता है तब वह शहर के प्रदूषित बदलाव से वह घबराता है। गाँव से भागकर शहर आया हुआ आदमी शहर के सम्मोहन से दूर होने लगता है-

''कत्लगाह तक लाकर
छोड़ गयी
मुझको इस शहर की हवा।
चढ़ी उमर-सी पक्की सड़कों ने
माटी से मन की
हर गन्ध लूट ली
लाल-हरी, पीली रोशनियों में
तन की परछाई तक छूट ली,
तेज धार दुपहर की धूप में
छोड़ गयी
मुझको इस शहर की हवा।''[25]

शहरी जिन्दगी से वह शीघ्र ही ऊब जाता है। वह छोड़कर जायें भी तो कैसे ? यहाँ रहना उसकी विवशता है, आखिर वह क्या करे -

''इस तरह मौसम बतलाता है
बताओ क्या करें ?
शाम को सूरज निकलता है
बताओं क्या करें ?
यह शहर वह है कि जिसमें
आदमी को देखकर
आइना चेहरे बतलाता है,
बताओं क्या करे ?
आदतें मेरी किसी के

होंठ की मुस्कान थी
अब इन्हीं से जी दहलता है,
बताओं क्या करें ?''[26]

डॉ. विनोद निगम लिखते हैं-

''बहरी आवाजों के घेरे
ध्वनियों को छोड़कर अंधेरे
गीतों के गाँव चले आये
हम नंगे पाँव चले आये।

सड़के थी, सड़कों में घर थे
कोलाहल से भरे सफर थे,
हम थे सूखे वृक्षों जैसे,
जंगल से जल रहे शहर थे,
छोड़ सुलगते सवाल सारे,
सारे सम्बन्ध रख किनारे
अपनी चौपाल चले आये
बेबस बेहाल चले आये।''[27]

प्रदूषण केवल शहर में व्याप्त अस्वस्थता का नहीं है। राजनीतिक स्वार्थों और षड्यन्त्रों के तहत गाँव-देहात भी अपने मूल स्वरूप से हटकर बदरंग होते जा रहे हैं। ग्रामीण संस्कृति तीव्रता से विनष्ट हो रही है। गाँव का शहरी-करण होना वहाँ कल-कारखानों का स्थापित होना और औद्योगिक विकास के क्रम में ग्राम-संस्कृति का समूल नष्ट होना जनवाद के परिप्रेक्ष्य में एक सही मनः स्थिति इन नवगीतों में व्यक्त है। माहेश्वर तिवारी ठीक ही कहते हैं-

''रंग भरी संध्याएँ लगती है
तितली के कटे हुए पंख।
कुहरे में डूब गये झोंपड़े
लगते हैं, टूट गये शंख।

बंजर धरती सूखे तालो में
हाँफ रहा है मेरा गाँव।
कोहरीले धुएँ और बढ़े

धुप अंधेरे में

सन्नाटा चीर गया पाँव।"[28]

आम आदमी जो ग्रामीण परिवेश में गुजर-वशर कर शहर में जीवन बिता रहा है और शहरी संत्रास को झेलता हुआ जब आक्रोश में भर जाता है तो नवगीतकार विष्णु विराट उसकी आन्दोलित संचेतना को व्यक्त करता हुआ कहता है-

"हाथ में पत्थर लिये

बेखौफ

शहर की हद तक चले आये

गाँव के ये लोग अधनंगे

गाँव के सरपंच कहते हैं

ये शहर की धूप बाटेंगे

चाँदनी के भाग कर देंगे

वे नदी की धार काटेंगे

हाथ में जलती मशालें ले

भीड़ सूरज का करे बन्दन

सोचिये, ये सोच बेढंगे

शहर की हद तक चले आये।"[29]

जनवादी सोच से जब भी गीतकार जुड़ा है, उसके सामने भूखे, नंगे, निराश व हताश उस आदमी की छवि सामने आयी है, जो प्रतिदिन आजीविका के लिए, अपने अधिकार के लिए और जिन्दा रहने के लिए सतत संघर्षशील है। विष्णु विराट इस नैराश्य को बार-बार व्यक्त करता रहा है-

"हो रहा है सिन्धु मंथन।

कर रहे हैं असुर क्रन्दन

निकलता है एक नीला ज़हर,

बस्ती काँपती है।"

वैसे तो सामाजिक व्यवस्था का सबसे बड़ा शिकार वह आम आदमी ही रहा है, जो स्वयं की अस्मिता को सुरक्षित रखने के लिए हर पल संघर्षरत रहा है। संतुष्टि, हर्षोल्लास, सुख, खुशियाँ जैसे आनन्द के क्षण उसकी जिन्दगी से तिरोहित हो गये हैं। वह

बार-बार जिन्दगी को स्थापित करने की चेष्टा करता है और बार-बार आरोपित व्यवस्था उसे उजाड़ फेंकती है। नवगीतकार विष्णु विराट कहता है-

"इस अँधेरे-गीधवन के
बरगदों पर
ऐ बया ! तू क्यों बनाती घोंसला ??
ऐ बया, तू गीत मत गा
गीत सुन कोई सिपाही
तीर तेरे कण्ठ में खच-से गढ़ा देगा
ऐ बया, मत चहक
खुश मत हो, यहाँ पर
पंच परमेश्वर
तुझे चौपाल पर
फाँसी चढ़ा देगा
भाग जा, उड़ जा
अभागी तू बया
इस वनांचल से
व्यर्थ है यह घर बसाने की कला।"[30]

व्यवस्था में बदलाव आता है। कुछ नये मुखौटे सभ्यता के आवरण में आश्वस्त एवं धैर्य प्रदान करते हुए आते हैं, किन्तु आम आदमी का इनपर से अब विश्वास ही हट गया है। कवि आगे कहता है-

"आप बस्ती में रहेंगे
आदमी बन
छोड़िये बेकार की बातें।।
ज्यों ढला सूरज
कि कैंचुल छोड़ती-सी
भूत-सी काली भयावह फैलती है,
हाल ये, आत्मीय-सी परिछाइयों का है।
जंगली फल
पेड़ से टूटा

शिला–दर–शिला होता
जा गिरा विकराल मुँह में
ये चलन अन्जान अन्धी खाइयों का है।
कल तलक गुलजार ये होगा चमन,
छोड़िये बेकार की बातें।।''[31]

निराला से लेकर आज–तक का नवगीत समाज–व्यवस्था की इसी त्रासदी के रु–ब–रु रहा है। आम आदमी के दर्द से जुड़ा हुआ यह नवगीत गाँवों, कस्बों देहातों, श्रमजीवों, किसानों, लकड़हारों, मजदूरों बंधुआ अनुबंधित सेवकों दासों और गुलामों के प्रतिदिन की घटनाओं को स्वर देता रहा है। छोटी–छोटी खुशियाँ बड़े–बड़े दुःख, थोड़ी–सी राहत बड़े–बड़े आश्वासन मुहैया करा दिये जाते हैं। परिणामतः यह सर्वहारा, टूटा हुआ, दमित व शोषित आम आदमी या तो क्लीव और कापुरुष बनकर किसी मंदिर या मस्जिद की देहरी पर प्रार्थना या इबादत की आवाज में मिमियाता नजर आता है, या फिर जुझारु होकर हाथ में हंसिया या हथौड़ा लेकर सड़कों पर आकर मरने मारने के लिए प्रतिबद्ध हो जाता है।

नवगीतकार आम आदमी की पारिवारिकता और सामाजिकता से रु–ब–रु होता हुआ उसकी नित्यप्रति की जिन्दगी को तलाशता है। इसी तलाश के तहत वह गाँव के लोकोत्सवों में शामिल होता है। दैनिक आमोद–प्रमोद से जुड़ता है। आयातित अवसादों और पीड़ाओं से रोने/कलपने में साझेदार होता है, या फिर किसी ठाकुर, चौधरी, सेठ–साहूकार मिल–मालिक या जमींदार के सामने खुलकर अपने अधिकारों को प्राप्त करने के लिए जंग का ऐलान करता है। सम–सामयिक संदर्भों से जुड़कर नगर में व्याप्त वैचारिक प्रदूषण को व्यक्त करते हुए देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र' कहते हैं–

''तोड़ रहा है दम मरीज अब
वैद नये हैं, रोग पुराने
नामुराद हो चली गयी जब
नीम हकीमों की वह टोली
देखे, क्या इस ला–इलाज को
देंगे अब ये गण्डे, गोली
पूछ रही कड़वे काढ़े से
रखी हुई शीशी सिरहाने।''[32]

नवगीत हिन्दी–काव्य की सर्वाधिक सक्षम विधा के रूप में प्रतिष्ठित हो गया है। देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र' के गीतों का वर्ण्य वस्तुतः मानवीय संवेदनाओं के अनन्त भावात्मक क्षितिज तलाश करता हुआ आगे बढ़ा है। 'गंधमादन के अहेरी' में मिथकों का अभिनव प्रयोग, 'हम शहर में लापता हैं' संग्रह में नगर के विस्तृत प्रदूषण और भ्रष्ट आचरण की दुर्गन्ध 'पथरीले शोर में' दमन और शोषण का संत्रास 'पंखकटी महराबें' में बेबसी और असहाय बोध की घुटन, 'कुहरे की प्रत्यञ्चा' में स्पष्ट और अर्थहीन विसंगतियों का आरोपण चुप्पियों का दमघोट एहसास, 'आँखों में रेत प्यास' संग्रह में संत्रस्त कुंठाओं का आरोपन तथा उनकी समग्र रचनाओं में मानवीय धरातल पर परिवर्तित मूल्यों की विसंगतियों का पर्दाफाश स्पष्ट देखा जा सकता है।

इन्द्र जी के गीतों के कथ्य में मूलतः व्यंग्य के तीव्र प्रहार सर्वत्र दिखाई देते हैं। इन्द्र जी विसंगतियों की समीक्षा नहीं करते, किन्तु उन्हें उनकी सम्पूर्ण विद्रूपता के साथ समाज के सामने नंगा कर देते हैं। वह स्पष्ट कहते हैं –

''टूट सारा क्रम गया है
सूर्य का रथ
कहाँ जाने थम गया है।
रात–दिन
ठण्डी हवाएँ चला करती
तेज तीखी
काठ होते
प्राण तन को
चीरती आरी सरीखी
झर रहे–रह–रह
बुरादे–से इरादे
वर्फ में परिवेश सारा जम गया है।''[33]

कवि जीवन भर संघर्षों से जूझता रहा। पीड़ा उसके जीवन का अनिवार्य अंग बन गयी। पीड़ा एक ऐसा भाव है, जिसमें प्रत्येक व्यक्ति का तादात्म्य सहज ही हो जाता है। हर्षोल्लास की स्थितियाँ विरल ही हैं, इनकी कविता–वल्लरी भी दर्द के जल में पल्लवित और विकसित हुई है। इस आपाधापी में कौन किससे अपने मन की बात कहे इसलिए कवि को सभी रिश्तों में दुःख ही केवल सगा लगता है–

''जितनी ठिगनी खुशियाँ है
उतनी ही व्यथा बड़ी है।''[34]

पीड़ा का यह वृत्त खामोशी सन्नाटा और उदासी के आधार-बिन्दुओं के बिना अपूर्ण है। खामोशी में निहित आत्मीयता संवाद से अधिक वाचल होती है। इसीलिए वह कभी 'पथरीले भोर में सन्नाटों का' छन्द बुनता है, तो कभी एकान्त में चुप्पियों की पैजनी का राग छेड़ता है। मानव-हृदय की अनुभूतियाँ अभिव्यक्ति के धरातल पर आने के लिए छटपटाती हैं। कहने और न करने के बीच तनाव की स्थिति काव्य-सृजन प्रक्रिया की भूमिका है। हृदय में तरंगित भावनाओं के ज्वार को स्वर्णिम अक्षरों में बाँध कर भी तृप्त नहीं होता-

''नीली भाषा के हर स्वर्णाक्षर में
गीतांजलियों के ज्वारित सागर में
यह जो कुछ तुम सुनते हो
एक कंठ विषपायी है, लयवन्ती सर्जना नही।''[35]

कवि इस तथ्य से भी अवगत है कि दर्द जो लिए बिना अथवा रेत में झुलसे बिना सिद्धि-मंजरी पाना असम्भव है, भले ही उसे फूलों के बदले काँटों का उपहार मिले-

''क्या हर प्रतिमा के साथ यही होता।
काँटे वह चुनता जो कि फूल बोता।''[36]

अतीत की व्यतीत अनुभूतियों का भी एक अपना मानस-इतिहास होता है। जीवन-यात्रा कितनी दूर तक तय कर लें, लेकिन कुछ प्रसंग घटनाएँ और स्थितियाँ साँचों में ढल कर हृदय की अक्षय निधि बन जाती हैं-

''लक्ष्य तक पहुँचने पर
भीड़ों के वर्तमान चेहरों में
वे साथी ही अक्सर सुधि आते
जिनसे हम
फिर न कभी मिलने को
यात्रा के बीच बिछुड़ जाते है।''[37]

इसी तरह काल-चक्र के धनुष से वर्ष वाणों की तरह क्रमशः निकल जाते है-

''एक वर्ष और
चीरता उदास आसमान को

तीर–सा कमान से

निकल गया।''[38]

यह सर्वथा सत्य है कि वक्त यादों की केंचुली छोड़कर सर्प के समान सरक जाता है और सरकते–सरकते भूली–बिसरी बातों के दंश बार–बार वर्तमान कर जाता है–

वक्त

साँप–सा सरक गया

यादों की छोड़ केंचुली

पाखी–से उड़ गये सपन

भोर हुए

आँख जब खुली

दुहराता सूने में मन

भूली बिसरी कल की बातें।''[39]

व्यक्तिगत अनुभवों से शून्य होकर कविता नहीं लिखी जा सकती। कवि भोगे हुए सत्य को कविता में रूपायित करता है और कविता कवि के व्यक्तित्व का निर्माण करती है। आज की भाग दौड़ में भले ही बुद्धि आगे निकल गई है और हृदय पीछे छूट गया है। फिर भी संवेदनशील कवि हृदय की कोमल अनुभूतियों के संचित कोष को नेह–नीड़ में संजोकर उनसे नयी ऊर्जा प्राप्त करता है, यही विशिष्टता उसे साधारण व्यक्ति से पृथक, अस्तित्व प्रदान करती है। 'पथरीले शोर में' कवि का प्रथम काव्य संग्रह है। अन्य काव्य–कृतियों की अपेक्षा इस रचना में कवि की रोमानी दृष्टि और भावुकता अधिक मिलतीहै। कविता सदाबहार भावना की आत्मजा है जो अभाव के घर में फूलती फलती है और जीवन के यथार्थ से उसकी डोर बँधी हुई है।

काल के पृष्ठ भले ही धूमिल हो जाएँ पर उन पर लिखी रश्मिलिपि की भाव भीनी कर्पूरी यादों की सुगन्ध कवि के हृदय की धड़कन की अंग बन जाती है–

''काल के धूमिल क्षितिज पर अस्तमित दिनमान–की

चिर अनंकित रश्मिलिपियों के अधूरे पत्र–सा

फिर पवन की सुरभि प्रेरित पंख पर उड्डीन हो–

मैं तुम्हारे किसलयी उच्छ्वसित अम्बर में तिरा।''[40]

यह कहना असंभव न होगा कि भावुकता की दृष्टि से छायावादी कवियों की तरह कवि 'इन्द्र' जी ने भी भीतरी सौन्दर्य के साथ नारी सौन्दर्य को गढ़ा है। कवि नारी के देह-व्यापार की प्रणय-कथा के स्थान पर सौन्दर्य के समग्र प्रभाव की व्यंजना करता है। कहीं-कहीं नारी की रूप-माधुरी का परम्परागत वर्णन भी मिलता है-

''तुम अपने चाँद-से मुख पर
मचलते-मेघ-सी
इस साँवली लट को
हटा लो ना।''[41]

नेह रूप का परस्पर अन्योन्याश्रित संबंध है। प्रेम और सौन्दर्य पारखी कवि देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र' की दृष्टि आकर्षक समुद्र में डूब कर कल्पना के मोती चुन लेती है। प्रेम और सौन्दर्य रूपक अलंकार के उपमेय और उपमान की भाँति मिलकर तद्रूप हो गए हैं-

''रूप और नेह ने परस्पर
जब-जब भी रचा है स्वयंवर
हमने सबकी नजर बचा कर
उत्सव से
तुझे हर लिया है।''42

नारी केवल प्रेयसी ही नहीं माँ, पुत्री, बहन, सम्बन्धी सामाजिक रिश्तों की वृत्त की धुरी भी है। कवि ने यशोधरा के रूप में माँ के हृदय की पीड़ा को साकार कर नारी-जाति के गरिमामय सत्य को उद्‌घाटित किया है। पत्नी-पुत्र के सम्मोहन आकर्षण को छोड़कर तथागत सन्यास का शंख प्राप्त करने वन को गए हैं। स्वप्निल संसार से विरक्त होकर निर्वाण-प्राप्ति में जीवन की सार्थकता नहीं हैं-

''छोड़ कर इस स्वप्न संसृति को
शून्य में निर्वाण का पद-ले
सत्य कब पाया तथागत ने
बेच मुरली शंख के बदले।''[43]

अतीत और वर्तमान के कालातीत सूत्र को अक्षुण्ण बनाये रखने के लिए कवि सांस्कृतिक सत्य का सहारा लेता है। 'दिन पाटलिपुत्र हुए' रचना मिथकीय चेतना का दस्तावेज है। आधुनिक रचनाकार किसी संकट परिस्थिति और विसंगति आदि की प्रस्तावना रचना के धरातल पर करता है तो वह सभ्यता के ऐतिहासिक विकासक्रम में

मानवीय प्रश्नों के चक्रव्यूह से जूझता हुआ प्राचीन घटनाओं और पात्रों को नया मुहावरा प्रदान कर सर्जकीय क्षमता का नया क्षितिज खोलता है। मानव-जीवन की विडम्बना है कि इस जगत की मरु-यात्रा में व्यक्ति जिस उपलब्धि जल की एक बूँद के लिए आजीवन प्रतीक्षा करता है और विजय की इस अंतिम घड़ी में वह उसी उपलब्धि से वंचित रह जाता है-

''जब-जब भी विजय-पर्व नियराता
कीचड़ में धँस जाता रथ का पहिया।''[44]

कवि सृजन-धर्मिता के एक-एक बिन्दु को क्रमशः बुनता हुआ टूट-टूट कर बार-बार जुड़ता है अर्थात औरों को गढ़ने की फिक्र में वह स्वयं मिटता है-

''औरों के जयी अश्वमेघ में
बार-बार खुद को ही
छोड़ा है हमने।''[45]

आदिम युग से लेकर वर्तमान युग तक भी कुछ परम्पराएँ अपना इतिहास बार-बार दोहराती हैं। आज भी प्रतिभाशाली और प्रबुद्ध व्यक्ति अपनी मानसिक क्षमताओं के बावजूद अपने प्राप्य से वंचित रह जाता है-

''आचार्यों की अन्धी श्रद्धा की
वेदी पर हम कटे अंगूठे हैं।''[46]

कविता अपनी भावनाओं और विचारों की अभिव्यक्ति के लिए न केवल पुराख्यानोपजीवी है, बल्कि इसके साथ-साथ प्रकृति की सहजता और सौन्दर्य का भी ऋणी है। प्रकृति भाव् जगत और रूप स्तर पर मानव हृदय के अनुरूप है। संस्कृति की प्रत्यूष वेला से प्रकृति मानव की सहचरी रही है। प्रकृति के साथ कवि का संवाद उसकी भावनाओं को नयी रंगत और आत्मीयता की पारदर्शी गहराई देकर अभिव्यक्ति की इन्द्रधनुषी कल्पनाएँ करता है। नदी, समुद्र, आकाश, वृक्ष चाँद और ऋतुएँ-समस्त प्रकृति मानव जीवन की सुख-दुःखात्मक गाथाओं की जीवन्त परिभाषा है। कवि कहता है-

''चाँदनी की छाँह में घर से चली थी यह नदी
धूप में तप कर नदी की देह भी साँवला गयी।''[47]

इनके नवगीतों में मनः स्थिति के अनुरूप दोपहरी का सप्राण चित्रण किया गया है-

''ये अहि-मयूर-मृग-बाघ सभी
भीषण प्रदाह में हाँफ रहे
आँधी से हिलती शाखों पर
सन्तप्त झकोरे काँप रहे।''[48]

कवि ने दुपहरी, रागारुण सन्धा, ग्रीष्म, वर्षा और ढलते सूरज आदि सभी प्राकृतिक दृश्यों को कारयित्री प्रतिभा से रंजित कर प्रकृति प्रेम का परिचय दिया है। मानव की स्वभावगत विशेषता भी प्रकृति का पर्याय है। आज के मशीनी युग में मूल्य-विघटन, निराशा, कुण्ठा की झाड़ियों में मनुष्य इतना फँस गया है कि प्रकृति विकृति की समानधर्मा हो गयी है। कविता, जितनी वैयक्तिक होती है, उतनी निर्वेयक्तिक भी। कवि यथार्थ के भौतिक धरातल पर संस्थित होकर चतुर्दिक परिवेश के प्रति सजग रहता है। कवि जहाँ भी भ्रष्टाचार अनैतिकता और शोषण का ताण्डव नृत्य देखता है, वहाँ उसका व्यंग्य का स्वर खीझ में बदल जाता है। व्यंग्य के पीछे जो तीखी पीड़ा छिपी है वह वाण की तरह पाठक के हृदय को बेध देती है। आज व्यक्ति चालाक और धूर्त लोगों के संग रह कर स्वार्थ साधते हैं, आदर्शों के धनी व्यक्ति के संग नहीं। इस स्थिति पर कवि व्यंग्य करता हुआ कहता है-

''बुलबुल को मत सराहिये
कौवों के होकर रहिये।''[49]

आज का व्यक्ति जितना व्यावसायिक है, वह समाज की दृष्टि से उतना ही उच्चस्तरीय माना जाता है और जो जितना प्रबुद्ध है उसका पथ उतना ही विरुद्ध है। मनुष्य भीतर से जितना खोखला है उतना ही वह ऊपर से आदर्श और प्रदर्शन का आवरण ओढ़कर नकली अभिनय करता है-

''भीतर जितना धुँधला पत्र लेख
उतना रंगीन है लिफाफा।''[50]

नेता साहित्यकार और समीक्षक सभी की विरूप स्थिति के प्रति आक्रोश अभिव्यक्त किया है।

आज महानगरीय जीवन की व्यस्तता में मानव-प्रेम की कोमल सम्बन्ध रेत से निरर्थक हो गए हैं। बाहर तो कोलाहल है पर भीतर एक गहरा सूनापन और बेगानापन नफरत की आग में रिश्तों के पौधे झुलस गए हैं। मनुष्य विश्वास का दिल लिए जितना आगे बढ़ता है, उतना ही संशय का अंधकार उसे पीछे खींच लेता है। रिश्तों का खून जैसे

जम गया है। मानव-संबंधों में इस तनाव को देखकर कवि उसका विकल्प खोजता हुआ कहता है कि रिश्तों की अनौपचारिकता को टूटने से बचाने के लिए कम से कम बात-चीत की औपचारिकता से भी सम्पर्क बनाए रखें :-

''चाहो तो बन्द रखो रिश्तों के दरवाजे
बातचीत की खिड़की
खुली रहने दो।''[51]

कवि लड़ते-लड़ते टूट गया लेकिन लालच बेईमानी से समझौता नहीं किया। जीवन-युद्ध में अकेला रह कर भी आशा का दामन नहीं छोड़ा। उत्साह और आन्तरिक शक्ति को संचित कर जीवन-साधना करता है-

''युद्ध में अकेला लड़
होकर भी निः साधन
कर अपने भीतर तू
शक्ति का समाराधन।''[52]

किसी भी साहित्यिक रचना के लिए यह आवश्यक नहीं कि उसका शिल्प परम्परागत घेरे में अथवा शास्त्रीय सीमाओं में आबद्ध हो। विषय प्रतिपादन की दृष्टि से मध्यकालीन वीर रसात्मक कृतियों में यदि ओज गुण की प्रधानता है, तो श्रृंगारिक रचनाओं में माधुर्य और प्रसाद गुण का प्राचुर्य है, लेकिन यह दोष न होकर अपनी-अपनी परंपरा की कृतियों का चरित्र लक्षण है। कवि के गीतों में ओज-गुण का अभाव प्रशाद और माधुर्य गुण के प्रभाव को अपेक्षाकृत और तीखा बना देता है। कुछ स्थितियाँ ऐसी होती है, जिनका सर्जनात्मक प्रतिभा अतिक्रमण कर परिस्थितियों के अनुसार उन्हें नया मुहावरा प्रदान करती है। ओज-गुण का संबंध वीररस से है, जिसका स्थायी भाव उत्साह है। मध्ययुगीन और वर्तमान स्थितियों के मध्य इतिहास की दीवार दोनों गुणों की विशेषताओं को अलग-अलग खाँनों में बाँट देती है। आज बाह्य संघर्ष के साथ-साथ आन्तरिक संघर्ष के दोहरे रूप को झेलने वाला व्यक्ति यदि अपनी मनः-स्थितियों की त्रासदी और युग की विसंगतियों को संगति प्रदान करता है, तो उसका यह प्रयास भी ओज गुण के उत्साह से कम नहीं। इस तथ्य का स्पष्टीकरण कवि के शब्दों में प्रस्तुत है -
''कल्पित और कृत्रिम ओज गुण की अपेक्षा जिन्दगी की टूटन, विखराव, उदासी, अधूरेपन, धूंधलकों और तनहाइयों को महानगरीय भीड़ों की हृदय-बुद्धिविहीन यान्त्रिकता भागम-भाग और कोलाहल को, व्यक्ति की छटपटाहट को यदि नवगीत

ईमानदारी से छन्द और लय के व्याकरण में बाँधने की चेष्टा करता है तो वह कहीं अधिक स्पृहणीय होगा।''[53]

'इन्द्र' जी के गीतों में विशेषणों का प्रयोग अत्यधिक हुआ है। विशेष्य के साथ विशेषण जोड़कर उसके रूप-गुण की सीमाओं को साकार कर निजी अनुभवों को तराशा है। रेतीली नदी, अपाहिज हंस, काला कर्फ्यू, बूढ़े सूरज बन्ध्या क्रांति, संध्या जलदर्पणा कवचहीन साँसों पर फूल-गाछ वाले दिन, पुण्यश्लोका ऋचाएँ, शाप लगा चन्द्रमा, परकटा सुआ, अभिशप्त गन्धर्व, घायल सन्नाटा, पंखकटी महराबें, रेशमी लिपि, शिलापंखी छन्द, कर्पूरी यादें, मोरपंखिया साँझ, शंखपुष्पी अश्रु, वर्तुल लहरें, रीता घट आदि विशेषण कवि की पारदर्शी दृष्टि के परिचायक हैं।

बिम्ब-व्यापार कवि की कारयित्री प्रतिभा की उपज है। वे बिम्बों में सौन्दर्य की ताजगी, रोमानी महक, घरेलू रिश्तों का अपनापन और समकालीन परिवेश संबंधी समग्र भावचित्रों के संशलिष्ट रूप प्रस्तुत करने में सक्षम हैं। बिम्बों की दृष्टि से यह कहना अतिशयोक्ति न होगा कि कवि ने बिम्बों की जो सृष्टि की है। उन्हें पृथक रूप से एक शोध-प्रबन्ध के अध्ययन का विषय बनाया जा सकता है। बिम्बों की दृष्टि से कुछ उदाहरण द्रष्टव्य है-

''तुम कि जैसे
क्षीर-सागर में
सद्यस्नाता लयवती पूनम
छेड़ती मरु के
दिगन्तों में
शबनमी अभिसार की सरगम
मौन का अभिशप्त आश्वर में
रागिनी स्वरपंखिनी हो तुम।''[54]

''पेड़ों के माथे पर चिपके हैं छूप के दिठौने।''[55]

''दूर-दूर तक कोई
नदी नहीं दिखती है
हिरनों की आँखों में
रेत-प्यास लिखती है।''[56]

"सूरज ने

कलियों पर मारी

सात रंग वाली पिचकारी।"[57]

अंत में कहा जा सकता है कि देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र' के नवगीतों के कथ्य का पटल अत्यंत विस्तृत है।

गाँव की पगदंडियों से लेकर महानगरों के राजपथ तक उनके नवगीत चहल-कदमी करते हैं। अँधेरी दमघोट कंदराओं के अंधेरों को उजागर करने वाले तथा अभिजातीय सम्यता के कृत्रिम उजालों का विशाक्त प्रदूषण व्यक्त करने वाले ये नवगीत बदलते सोच और निराधारणों के साथ अग्रसर हुए हैं। देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र' ने इन नवगीतों के वर्ण्य-विषय में मानवीय संवेदनाओं के अनन्त विस्तार समाहित किये हैं।

अगले अध्याय में इनके नवगीतों की प्रासंगिकता तथा सामाजिक चेतना के प्रस्तार विवेचित किये जायेंगे।

संदर्भ सूची

1. महादेवी वर्मा के 'गीत'
2. कैलाश गौतम कृत कविता लौट पड़ी काव्य संग्रह की भूमिका से
3. कुँअर बेचैन 'धार पर हम' सम्पादक-वीरेन्द्र आस्तिक कानपुर
4. कैलाश गौतम 'कविता लौट पड़ी' भारतीय प्रकाशन पृ. 42
5. देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र' पंखकटी महराबें पृ. 45
6. वही हम शहर में लापता है पृ. 50, ईशान प्रकाशन
7. वही वही
8. वही 'गन्धमादन के अहेरी' अनुभव - प्रकाशन पृ. 16
9. वही वही पृ. 20
10. वही 'आँखों में रेत प्यास' पृ. 44, पीति मंदिर प्रकाशन
11. वही 'दिन पाटलिपुत्र हुए' पृ. 29 प्रवीण प्रकाशन
12. वही दिन पाटलिपुत्र हुए, प्रवीण प्रकाशन, पृ. 64
13. वही कुहरे की प्रत्यश्चा पृ 9, राजेश प्रकाशन
14. वही वही पृ. 9
15. वही वही पृ. 10
16. वही हम शहर में लापता हैं, पृ. 16, 17
17. वही वही पृ. 19
18. डॉ. कुँअर बेचैन के नवगीत :-प्रकाशक-हिन्दी-साहित्य निकेतन बिजनौर पृ.7
19. निराला - 'बेला'
20. वही वही
21. वही राग-विराग (सं. डा राम विलास शर्मा पृ. 130)
22. हिन्दी की नवगीत धारा परंपरा का विविध आयाम पृ. 54
23. देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र' 'पथरीले शोर में' पृ. सं. 9
24. डॉ. सत्येन्द्र शर्मा नवगीत - 'संवेदना औ शिल्प' पृ. 313, 314
25. श्री कृष्ण तिवारी - नवगीत दशक-2 पृ. 108
26. अमर नाथ श्रीवास्तव पृ. 137
27. भव्य भारती : नवगीत शिखर (1999) पृ. 31
28. नवगीत दशक-2 पृष्ठ 125

29. डॉ. विष्णु विराट : धूम्रपान से लौटते हुए पृ. 13
30. वही वही पृ. 19
31. वही वही पृ. 21
32. देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र' 'हम शहर में लापता हैं' पृ. 25
33. वही 'गन्धमादन के अहेरी' पृ. 59
34. वही 'चुप्पियों की पैंजनी' पृ. 27
35. वही 'दिन पाटलिपुत्र हुए' पृ. 28
36. वही 'पंखकटी महराबें' पृ. 25
37. वही वही पृ. 39
38. वही वही पृ. 33
39. वही 'चुप्पियों की पैंजनी' पृ. 49
40. वही पंखवटी महराबें पृ. 53
41. वही पथरीले शोर में पृ. 56
42. वही आँखों में रेत प्यास पृ. 47
43. वही दिन पाटलिपुत्र हुए पृ. 23
44. वही वही पृ. 78
45. वही वही पृ. 77
46. वही वही पृ. 65
47. वही वही पृ. 85
48. वही पंखकटी महराबें पृ. 66
49. वही वही पृ. 31
50. वही वही पृ. 42
51. वही चुप्पियों की पैंजनी पृ. 85
52. वही वही पृ. 21
53. वही आँखों में रेत प्यास पृ. 17
54. वही दिन पाटलिपुत्र हुए पृ. 29
55. वही चुप्पियों की पैजनी पृ. 59
56. वही आँखों में रेत प्यास पृ. 75
57. वही चुप्पियों की पैजनी पृ. 58